आलतू का पहला रोज़ा

कमला भसीन

रमज़ान के महीने का आख़िरी जुम्मा (शुक्रवार) था। शाम को जब मैं रहाना और सहबा के घर पहुंची तो वहां खूब चहल-पहल और रौनक थी। "सेवा" लखनऊ नाम की संस्था के तीस लोग वहां जमा थे। "सेवा" संस्था लखनऊ और उसके आस-पास के गांवों की कढ़ाई करने वाली कारीगरों के साथ काम करती है। संस्था मज़दूर औरतों को काम देती है। काम का उचित दाम देने की कोशिश करती है, उनकी पढ़ाई-लिखाई और सेहत का भी ध्यान रखती है।

इस शाम की रौनक को देख कर ऐसा लगता था जैसे किसी बगीचे में अलग-अलग रंगों की चिड़ियां इकट्ठी हो कर चहचहा रही हों।

आलतू गोटे वाला, लाल दुपट्टा पहने खुब सज रही थी। उसके चेहरे पर खुशी थी। सारी सहेलियां खूब लाड़ कर रही थीं। पूछने पर पता चला आज आलतू का पहला रोज़ा था। इसीलिए सब खुशियां मना रहे थे। सुबह-सवेरे से आलतू ने कुछ नहीं खाया था। पर फिर भी चेहरे पर चमक थी, आंखों में रोशनी थी। और सब सहेलियां भी रोज़े से थीं।

उसी वक्त एक सहेली कुरान शरीफ़ ले आई। सब ने बारी-बारी से एक-एक पारा पढ़ा। अब रोज़ा तोड़ने का वक्त हो गया था। आम का पन्ना और खजूर तैयार थे रोज़ा तोड़ने के लिए।

सबसे पहले आलतू को खजूर खिलाया गया। सबने बारी-बारी से आलतू को प्यार किया और उसे तोहफा दिया। किसी ने दुपट्टा, किसी ने बाली, किसी ने चूड़ियां, किसी ने पैसे।

आलतू क़रीब पच्चीस बरस की है। उसे दिल की बीमारी है। उसका आपरेशन होना ज़रूरी है। सब को बहुत फ़िक्र है। कुछ दिन पहले आलतू की सहेलियां मन्नत मानने गई थीं। जब आलतू ने यह सुना तो उसने रोज़ा रखने का तय किया।

इन सब को इतना घुला-मिला देख कर कोई कह सकता है कि आलतू हिन्दू है? हां, आलतू हिन्दू है और उसकी ज़्यादातर सहेलियां मुसलमान हैं। पर जब दिल मिल जाएं तो फिर फ़र्क क्या। ये सहेलियां होली, दीवाली, ईद सब मिल कर मनाती हैं।

□